

## [२९] श्री संस्तारक (प्रकीर्णक)सूत्रम्

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

### “संस्तारक” मूलं एवं छाया [मूलं एवं संस्कृतछाया]

[आद्य संपादकः - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म. सा.]

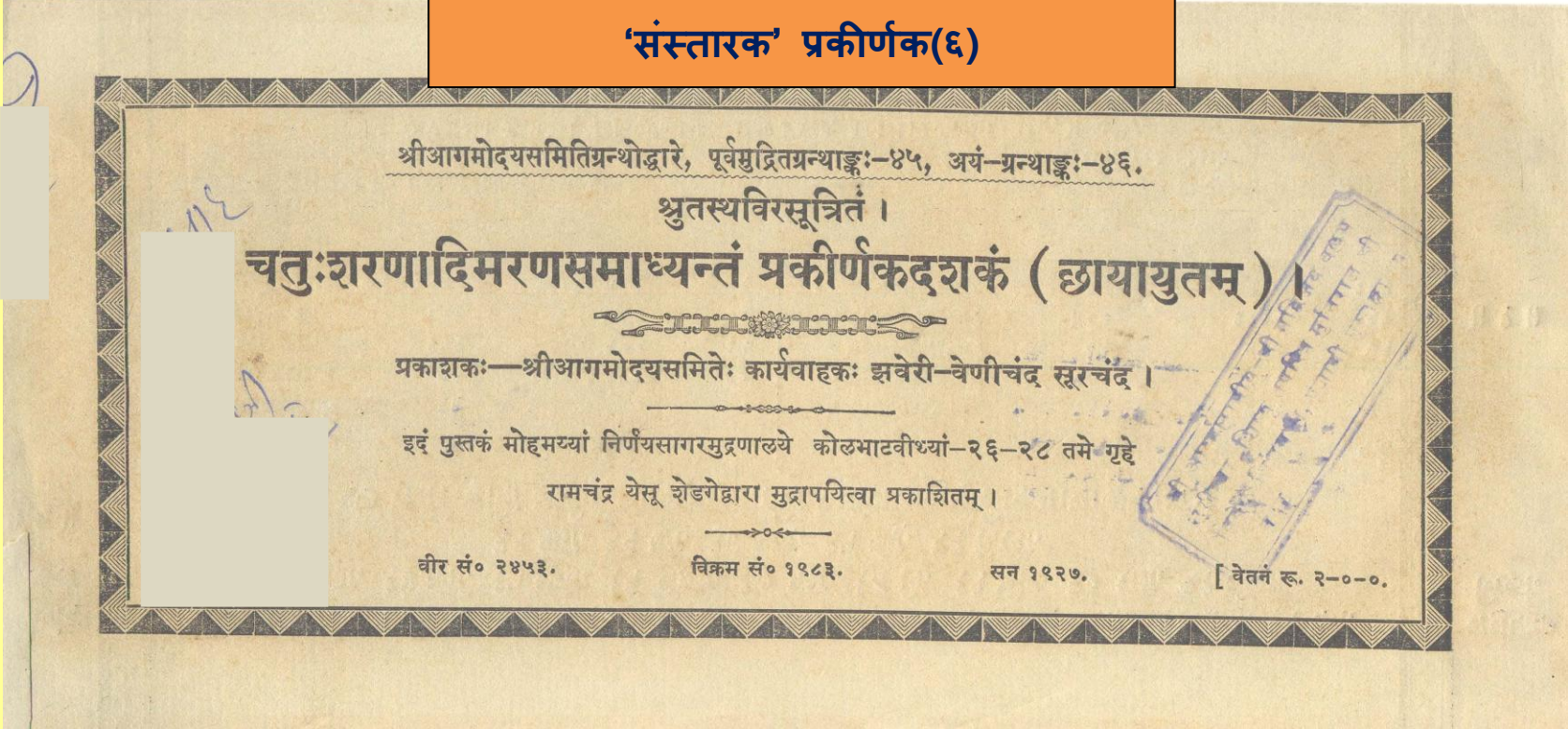
(किञ्चित् वैशिष्ट्यं समर्पितेन सह)

पुनः संकलनकर्ता → मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D.)

15/01/2015, गुरुवार, २०७१ पौष कृष्ण १०

jain\_e\_library's Net Publications

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२९], प्रकीर्णकसूत्र-[६] “संस्तारक” मूलं एवं संस्कृतछाया

|   |  |
|---|--|
| <p>आगम<br/>(२९)</p>   | <p style="text-align: center;"><b>“संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूलं+संस्कृतछाया)</b></p> <p style="text-align: center;">----- मूलं [-] -----</p>   |
| <p>प्रत<br/>सूत्रांक<br/>[-]<br/><br/>दीप<br/>अनुक्रम<br/>[-]</p> | <p style="text-align: center;">मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र - [२९], प्रकीर्णकसूत्र - [०६] “संस्तारक” मूलं एवं संस्कृतछाया</p> <div style="text-align: center; border: 1px solid black; padding: 5px; margin: 10px auto; width: 80%;"> <p><b>‘संस्तारक’ प्रकीर्णक(६)</b></p> </div>  <p style="text-align: center;">श्रीआगमोदयसमितिग्रन्थोद्वारे, पूर्वसुद्धितग्रन्थाङ्कः-४५, अयं-ग्रन्थाङ्कः-४६.<br/>श्रुतस्थविरसूत्रितं ।<br/><b>चतुःशरणादिमरणसमाध्यन्तं प्रकीर्णकदशकं ( छायायुतम् ) ।</b></p> <p style="text-align: center;">प्रकाशकः—श्रीआगमोदयसमितेः कार्यवाहकः झवेरी-वेणीचंद्र सूरचंद्र ।</p> <p style="text-align: center;">इदं पुस्तकं मोहमय्यां निर्णयसागरमुद्रणालये कोलभाटवीथ्यां-२६-२८ तमे गृहे<br/>रामचंद्र येसू शेडगेद्वारा मुद्रापयित्वा प्रकाशितम् ।</p> <p style="text-align: center;">वीर सं० २४५३.      विक्रम सं० १९८३.      सन १९२७.      [ वेतनं रु. २-०-०.</p> |
|   | <p>संस्तारक-प्रकीर्णकसूत्रस्य मूल “टाइटल पेज”</p>  |

| मूलाङ्काः १२१  |                       |           | 'संस्तारक' प्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रम |                        |           | दीप-अनुक्रमाः १२१ |                         |           |
|--|-----------------------|-----------|--|------------------------|-----------|-------------------|-------------------------|-----------|
| मूलांकः  | गाथा                  | पृष्ठांकः | मूलांकः                                  | गाथा                   | पृष्ठांकः | मूलांकः           | गाथा                    | पृष्ठांकः |
| ००१  | मङ्गलं, संस्तारकगुणाः | ००४       | ०३१                                      | संस्तारकस्वरूपम्, लाभं | ००७       | ०५६               | संस्तारकस्य द्रष्टांताः | ०११       |
| ८९-१३३   | भावना                 | ०१६       | -----                                    | -----                  | -----     | -----             | -----                   | -----     |
|  |                       |           |  |                        |           |                   |                         |           |
| मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र - [२९], प्रकीर्णकसूत्र - [०६] "संस्तारक" मूलं एवं संस्कृतछाया |                       |           |  |                        |           |                   |                         |           |

## ['संस्तारक' - मूलं एवं संस्कृतछाया] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले “चतुःशरणादिमरणसमाध्यन्तं प्रकीर्णकदशकं” नामसे सन १९२७ (विक्रम संवत् १९८३) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब । इस प्रतमे १० प्रकीर्णक थे.

इसी प्रत को फिर से दुसरे पूज्यश्रीओने अपने-अपने नामसे भी छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, अपना एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. जिसमे किसीने पूज्यपाद सागरानंदसूरिजी के नाम को आगे रखा, और अपनी वफादारी दिखाई, तो किसीने स्वयं को ही इस पुरे कार्य का कर्ता बता दिया और संपादकपूज्यश्री तथा प्रकाशक का नाम ही मिटा दिया ।

✦ **हमारा ये प्रयास क्यों?** ✦ आगम की सेवा करने के हमें तो बहुत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए हैं किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरूप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक **स्पेशियल फोरमेट** बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर **शीर्षस्थानमे** आगम का नाम, फिर मूलसूत्र या गाथा के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र या गाथा चल रहे है उसका सरलता से जान हो सके, बायीं तरफ **आगम का क्रम** और इसी प्रत का **सूत्रक्रम** दिया है, उसके साथ वहाँ **‘दीप अनुक्रम’** भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर सके । हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढ़ते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए हैं, मगर प्रत में गाथा और सूत्रो के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ **कौंस [-]** दिए है और जहां गाथा है वहाँ **||-||** ऐसी **दो लाइन** खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है ।

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है, जिसमे प्रत्येक अध्ययन आदि लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है, जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते अध्ययन या विषय तक आसानी से पहुँच सकता है । अनेक पृष्ठ के नीचे **विशिष्ट फूटनोट** भी लिखी है, जहां उस पृष्ठ पर चल रहे खास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन-भूल सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है ।

अभी तो ये [jain\\_e\\_library.org](http://jain_e_library.org) का ‘इंटरनेट पब्लिकेशन’ है, क्योंकि विश्वभरमें अनेक लोगो तक पहुँचने का यहीं सरल, सस्ता और आधुनिक रास्ता है, आगे जाकर ईसि को मुद्रण करवाने की हमारी मनीषा है।

.....मुनि दीपरत्नसागर.....

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूलं+संस्कृतछाया)

----- मूलं [१] -----

प्रत  
सूत्रांक  
॥१॥  
दीप  
अनुक्रम  
[१]

५ तंदुलवै-  
चारिके  
॥ ५३ ॥

काऽऽण नमुक्कारं जिणवरवसहस्र वद्धमाणस्स । संधारंमि निवद्धं गुणपरिवाडिं निसामेह ॥ १ ॥ ५८७ ॥  
एस किराराहणया एस किर मणोरहो सुविहिआणं । एस किर पच्छिमंते पडागहरणं सुविहिआणं ॥ २ ॥  
॥ ५८८ ॥ भूर्हणं जह नकयाण अवमाणयं अवड्झा(वड्झा)णस्स । मल्लाणं च पडागा तह संधारो सुविहि-  
आणं ॥ ३ ॥ ५८९ ॥ पुरिसवरपुंडरीओ अरिहा इव सबपुरिससीहाणं । महिलाण भगवईओ जिणजणणीओ  
जयंमि जहा ॥ ४ ॥ ५९० ॥ वेरुलिउव मणीणं गोसीसं चंदणं व गंधाणं । जह व रयणेसु वहरं तह संधारो  
सुविहिआणं ॥ ५ ॥ ५९१ ॥ वंसाणं जिणवंसो सबकुलाणं च सावयकुलाहं । सिद्धिगई व गईणं मुत्तिसुहं  
सबसुक्खाणं ॥ ६ ॥ ५९२ ॥ धम्माणं च अहिंसा जणवयवयणाण साहुवइणाहं । जिणवयणं च सुईणं सुद्धीणं  
दंसणं च जहा ॥ ७ ॥ ५९३ ॥ कल्लाणं अब्भुदओ देवाणं दुल्लहं तिहुअणंमि । वत्तीसं देविंदा जं तं ज्ञायंति

कृत्वा नमस्कारं जिनवरवृषभाय वर्धमानाय । संस्तारके निवद्धं गुणपरिपाटीं निशमय ॥ १ ॥ एषा किलाराधना एष किल मनोरथः  
सुविहितानां । एतन् किल पश्चिमान्ते पताकाहरणं सुविहितानाम् ॥ २ ॥ भूतिग्रहणं यथा दरिद्राणां(!) अपमानश्रापध्यानस्य । मल्लानां च  
पताका तथा संस्तारः सुविहितानाम् ॥ ३ ॥ सर्वपुरुषसिंहानां पुरुषवरपुण्डरीकोर्द्धत्रिव । महिलानां यथा भगवत्प्यो जितजनन्यो जयन्ति  
( तथाऽयं ) संस्तारः ॥ ४ ॥ वैदूर्यो मणीनामिव गोशीर्षं चन्दनमिव गन्धानाम् । रत्नेषु यथा वा वज्रं तथा संस्तारः सुविहितानाम्  
॥ ५ ॥ वंशानां जिनवंशः सर्वकुलानां च श्रावककुलानि । गतीनां सिद्धिगतिरिव सर्वसौख्यानां मुक्तिमुखम् ॥ ६ ॥ धर्माणां चार्हिंसा  
जनपदवचनानां साधुवचनानि । श्रुतीनां च जिनवचनं यथा च शुद्धीनां दर्शनम् ॥ ७ ॥ कल्याणमभ्युदयो देवानां दुर्लभं त्रिभुवने ।

संस्तारकस्य  
महत्ता

॥ ५३ ॥

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

भगवंत वीर वंदना, अथ संस्तारकस्य महत्ता वर्णयते

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

मूलं [८]

प्रत  
सूत्रांक  
॥८॥  
दीप  
अनुक्रम  
[८]

एगमणा ॥ ८ ॥ ५१४ ॥ लद्धं तु तए एयं पंडिअमरणं तु जिणवरक्खायं । हंतूण कम्ममल्लं सिद्धिपडामा तुमे  
लद्धा ॥ ९ ॥ ५१५ ॥ ज्ञाणाण परमसुक्कं नाणाणं केवलं जहा नाणं । परिनिव्वाणं च जहा कमेण भणिअं  
जिणवरेहिं ॥ १० ॥ ५१६ ॥ सव्वुत्तमलाभाणं सामन्नं चैव लाभं मन्नंति । परमुत्तमं तित्थयरो परमगई परम-  
सिद्धुत्ति ॥ ११ ॥ ५१७ ॥ मूलं तह संजमो वा परलोकरयाण किलिट्ठकम्माणं । सव्वुत्तमं पहाणं सामन्नं चैव  
मन्नंति ॥ १२ ॥ ५१८ ॥ लेसाण सुक्कलेसा निअमाणं बंभचेरवासो अ । गुत्तिसमिई गुणाणं मूलं तह संज-  
मोवाओ ॥ १३ ॥ ५१९ ॥ सव्वुत्तमतित्थाणं तित्थयरपयासिअं जहा तित्थं । अभिसेउच्च सुराणं तह संधारो  
सुविहियाणं ॥ १४ ॥ ६०० ॥ सिअकमलकलससत्थिअनंदावत्तवरमल्लदाभाणं । तेसिंपि मंगलाणं संधारो  
मंगलं अहिअं ॥ १५ ॥ ६०१ ॥ तवअग्गिनियमसूरा जिणवरनाणा विसुद्धपत्थयणा । जे निव्वहंति पुरिसा  
द्वाविंशदेवेन्द्रा यत्तद्ध्यायन्त्येकमनसः ॥ ८ ॥ लब्धं तु त्वयैतत् पण्डितमरणं तु जिनाख्यातम् । हत्वा कर्ममल्लं सिद्धिपताका त्वया  
लब्धा ॥ ९ ॥ ध्यानानां परमशुक्लं ज्ञानानां केवलं यथा ज्ञानम् । परिनिर्वाणं च यथा क्रमेण भणितं जिणवरेन्द्रैः ॥ १० ॥ सर्वोत्तम-  
लाभानां श्रामण्यमेव लाभं मन्यन्ते । परमोत्तमस्तीर्थकरः परमगतिः परमसिद्ध इति ॥ ११ ॥ मूलं तथा संजमो वा परलोकरतानां  
क्लिष्टकर्मणाम् । सर्वोत्तमं प्रधानं श्रामण्यं चैव मन्यन्ते ॥ १२ ॥ लेश्यानां शुक्लेश्या नियमानां ब्रह्मचर्यवासश्च । गुत्तिसमित्तयो गुणानां  
मूलं तथा संजमोपायः ॥ १३ ॥ सर्वोत्तमतीर्थानां तीर्थकरप्रकाशितं यथा तीर्थम् । अभिषेक इव सुराणां तथा सुविहितानां संस्तारकः  
॥ १४ ॥ सितकमलकलशस्वस्तिकनन्द्यावर्त्तवरमाल्यदामभ्यः । तेभ्योऽपि मङ्गलेभ्यः संस्तारकोऽधिकं मङ्गलम् ॥ १५ ॥ तपोऽपिनियम-

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

मूल [१६]

प्रत  
सूत्रांक  
॥१६॥

दीप  
अनुक्रम  
[१६]

६ संधारय-  
पङ्कणयं  
॥ ५४ ॥

संधारगङ्गदमारूढा ॥ १६ ॥ ६०२ ॥ परमद्वो परमउलं परमाययणंति परमकप्पुत्ति । परमुत्तमतित्थयरो परम-  
गई परमसिद्धिस्सि ॥ १७ ॥ ६०३ ॥ ता एअं तुमि लद्धं जिणवयणामयविभूसिअं देहं । धम्मरयणंसिआ ते  
(०णस्सिया ०णामया) पडिआ भवणंमि वसुहारा ॥ १८ ॥ ६०४ ॥ पत्ता उत्तमपुरिसा कल्लाणपरंपरा पर-  
मदिवा । पावयण साहु धीरं (०धीरा) कयं थ ते अज्ज सप्पुरिसा ! ॥ १९ ॥ ६०५ ॥ सम्मत्तनाणदंसणवरर-  
यणा नाणतेअसंजुत्ता । चारित्तसुद्धसीला तिरयणमाला तुमे लद्धा ॥ २० ॥ ६०६ ॥ सुविहिअगुणवित्थारं  
संधारं जे लहंति सप्पुरिसा । तेसि जिअलोगसारं रयणाहरणं कयं होइ ॥ २१ ॥ ६०७ ॥ तं तित्थं तुमि  
लद्धं जं पवरं सब्बजीवलोगंमि । पहाया जत्थ मुणिवरा निवाणमणुत्तरं पत्ता ॥ २२ ॥ ६०८ ॥ आसव-  
संवरनिज्जर तिन्निवि अत्था समाहिआ जत्थ । तं तित्थंति भणंती सीलव्वयवद्धसोवाणा ॥ २३ ॥ ६०९ ॥  
शूरा जिनवरज्जाना विशुद्धपध्यदनाः । ये पुरुषाः संस्तारकगजेन्द्रमारूढाः (ते) निर्वहन्ति ॥ १६ ॥ परमार्थः परमतुलं(ला)परमायतनमिति  
परमकल्प इति । परमोत्तमतीर्थकरः परमगतिः परमसिद्ध इति ॥ १७ ॥ तदेतत्त्वया लब्धं जिनवचनामृतविभूपितं शरीरं । धर्मरत्ना-  
श्रिता तव पतिता भवने वसुधारा ॥ १८ ॥ प्राप्ता उत्तमपुरुषा कल्याणपरम्परा परमदिव्या । प्रवचने साधु धैर्यं कृतं त्वयाऽयं सत्पुरुष !  
॥ १९ ॥ सम्यक्त्वज्ञानदर्शनवररत्ना नाना(ज्ञान)तेजःसंयुक्ता । चारित्रशीलशुद्धा त्रिरत्नमाला त्वया लब्धा ॥ २० ॥ सुविहितगुणवि-  
स्तारं संस्तारकं ये लभन्ते सत्पुरुषाः । तैर्जीवलोकसारं रत्नाहरणं कृतं भवति ॥ २१ ॥ तत्तीर्थं त्वया लब्धं यत् प्रवरं सर्वजीवलोके ।  
स्नाता यत्र मुनिवरा निर्वाणमनुत्तरं प्राप्ताः ॥ २२ ॥ आश्रवसंवरनिर्जराः त्रयोऽप्यर्थाः समाहिता यत्र । तत्तीर्थमिति भणन्ति शीलव्रत-

संस्तारकर्तु-  
रनुमोदना

॥ ५४ ॥

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

अथ संस्तारक-कर्तुः अनुमोदना क्रियते

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

मूल [२४]

प्रत  
सूत्रांक  
॥२४॥

दीप  
अनुक्रम  
[२४]

स. स. १०

भंजिय परीसहचमूं उत्तमसंजमवलेण संजुत्ता । भुंजंति कम्मरहिआ निव्वाणमणुत्तरं रज्जं ॥ २४ ॥ ६१ ॥ तिहुअणर-  
ज्जसमाहिं पत्तोऽसि तुमं हि (पि) समपकप्पंमि(ति) । रज्जाभिसेयमउलं विउलफलं लोहं विहरंति ॥ २५ ॥ ६१ ॥  
अभिनंदह मे हिअयं तुभे मुखस्स साहणोवाओ । जं लद्धो संधारो सुविहिअ ! परमत्थनित्थारो ॥ २६ ॥  
॥ ६१ ॥ देवावि देवलोए भुंजंता बहुविहाइं भोगाइं । संधारं चिंतता आसणसयणाइं मुंचंति ॥ २७ ॥ ६१ ॥  
चंद्रुव पिच्छणिज्जो सूरु इव तेअसा विदिप्पंतो । धणवंतो गुणवंतो हिमवंतमंहतविक्खाओ ॥ २८ ॥ ६१ ॥  
गुत्तीसमिहउवेओ संजमतवनिअमजोगजुत्तमणो । समणो समाहिअमणो दंसणनाणे अणत्तमणो ॥ २९ ॥  
॥ ६१ ॥ मेरुव पव्वयाणं सयंभुरमणुव चेव उदहीणं । चंदो इव ताराणं तह संधारो सुविहिआणं ॥ ३० ॥  
॥ ६१ ॥ भण केरिसस्स भणिओ संधारो केरिसे व अवगासे । उक्खंपिगरस्स (०भिकस्स) करणं एअं ता  
बद्धसोपानाः ॥ २३ ॥ भङ्क्त्वा परिषहचमूं उत्तमसंयमवलेन संयुक्ताः । भुञ्जन्ति कर्मरहिता निर्वाणमनुत्तरं राज्यं ॥ २४ ॥ त्रिभुवन-  
राज्यसमार्धिं प्राप्नोऽसि त्वं हि सर्वकल्पेषु । राज्याभिषेकमतुलं विपुलफलं लोकेऽनुभूतवान् ॥ २५ ॥ अभिनन्दति मे हृदयं त्वया मोक्षस्य  
साधनोपायः । यद्व्यथः संस्तारकः सुविहित ! परमार्थनिस्तारः ॥ २६ ॥ देवा अपि देवलोके भुञ्जन्ता बहुविधान् भोगान् । संस्तारकं  
चिन्तयन्त आसनशयनानि भुञ्जन्ति ॥ २७ ॥ चन्द्र इव प्रेक्षणीयः सूर्य इव तेजसा विदीप्यमानः । धनवान् गुणवान् हिमवद्भद्रं महान्  
विख्यातः ॥ २८ ॥ गुप्तिसमितिभिरुपेतः संयमतपोनियमयोगयुक्तमनाः । श्रमणः समाहितमनाः दर्शनज्ञानयोरनन्यमनाः ॥ २९ ॥  
मेरुविव पर्वतानां स्वयम्भूरमण इव उदधीनामेव । चन्द्र इव तारकाणां तथा संस्तारकः सुविहितानाम् ॥ ३० ॥ भण कीदृशस्य भणितः

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org



आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

मूलं [३१]

प्रत  
सूत्रांक  
॥३१॥

दीप  
अनुक्रम  
[३१]

५ तंदुल्य-  
चारिके  
॥ ५५ ॥

इच्छिमो नाउं ॥ ३१ ॥ ६१७ ॥ हायंति जस्स जोगा जरा य विविहा य हुंति आयंका । आरुहइ अ संधारं सुविसुद्धो तस्स संधारो ॥ ३२ ॥ ६१८ ॥ जो गारवेण मत्तो निच्छइ आलोअणं गुरुसगासे । आरुहइ अ संधारं अविमुद्धो तस्स संधारो ॥ ३३ ॥ ६१९ ॥ जो पुण पत्तभूओ करेइ आलोअणं गुरुसगासे । आरुहइ अ० सुवि० ॥ ३४ ॥ ६२० ॥ जो पुण दंसणमहलो सिद्धिलचरित्तो करेइ सामघं । आरु० अवि० ॥ ३५ ॥ ६२१ ॥ जो पुण दंसणमुद्धो आयचरित्तो करेइ सामघं । आरु० सुवि० ॥ ३६ ॥ ६२२ ॥ जो रागदोसर-हिओ तिगुत्तिगुत्तो तिसल्लमपरहिओ । आरुहइ० सुवि० ॥ ३७ ॥ ६२३ ॥ तिहिं गारवेहिं रहिओ तिदंड-पडिमोयगो पहिअकित्ती । आरुहइ० सुवि० ॥ ३८ ॥ ६२४ ॥ चउविहकसायमहणो चउहिं विकहाहिं विर-

संस्तारकः ? कीदृशे वाऽवकाशे ? । उत्कन्दिदस्य (अनशनस्य) करणमेतत् तावदिच्छामो ज्ञातुम् ॥ ३१ ॥ हीयंते यस्य योगा जरा च विविधाश्च भवन्त्यातङ्काः । आरोहति च संस्तारकं सुविशुद्धस्तस्य संस्तारकः ॥ ३२ ॥ यो गौरवेण मत्तो नेच्छत्यालोचनां गुरोः सकाशे । आरोहति च संस्तारकं अविशुद्धं ॥ ३३ ॥ यः पुनः पात्रभूतः करोत्यालोचनां गुरोः सकाशे । आरोहति च संस्तारकं सुविशुद्धं ॥ ३४ ॥ यः पुनर्मलिनदर्शनः ऋथचारित्रः करोति श्रामण्यम् । आरोहति च संस्तारकं अविशुद्धं ॥ ३५ ॥ यः पुनः शुद्धदर्शन आत्म-चारित्रः करोति श्रामण्यम् । आरोहति च संस्तारकं सुवि० ॥ ३६ ॥ यो रागद्वेषरहितः त्रिगुप्तिगुणत्रिशल्यमदरहितः । आरोहति च संस्तारकं सुवि० ॥ ३७ ॥ त्रिभिर्गौरवै रहितस्त्रिदण्डप्रतिमोचकः प्रथितकीर्तिः । आरोहति च संस्तारकं सुवि० ॥ ३८ ॥ चतुर्विध-

शुद्धाशुद्ध-  
संस्तारका

॥ ५५ ॥

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

संस्तारकस्य सुविशुद्धता-अविशुद्धतायाः कथनं

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

----- मूल [३९] -----

प्रत  
सूत्रांक  
॥३९॥

दीप  
अनुक्रम  
[३९]

हिओ निचं । आरुहइ० सुवि० ॥ ३९ ॥ ६२५ ॥ पंचमहवयकलिओ पंचसु समिईसु सुदु आउत्तो । आरुहइ० सुवि० ॥ ४० ॥ ६२६ ॥ उक्काया पडिविरओ सत्तभयट्टणविरहिअमईओ । आरुहइ० सुवि० ॥ ४१ ॥ ६२७ ॥ अट्टमयठाणजडो कम्मट्टविहस्स खवणहेउत्ति । आरुहइ० सुवि० ॥ ४२ ॥ ६२८ ॥ नवबंभचेरगुत्तो उज्जुत्तो दसविहे समणधम्मे । आरुहइ० सुवि० ॥ ४३ ॥ ६२९ ॥ जुत्तस्स उत्तमट्टे मलिअकसायस्स निवियारस्स । भण केरिसो उ लाभो संधारगयस्स समणस्स ? ॥ ४४ ॥ ६३० ॥ जुत्तस्स उत्तमट्टे मलिअकसायस्स निविआरस्स । भण केरिसं च सुखं संधारगयस्स खमगस्स ? ॥ ४५ ॥ ६३१ ॥ पढमिळ्ळुगंमि दिवसे संधारगयस्स जो हवइ लाभो । को दाणि तस्स सक्का अगं काउं अणघस्स ॥ ४६ ॥ ६३२ ॥ जो संखिज्जभवट्ठिई

कषायमथनश्चतसृभिर्विकथाभिर्विरहितो नित्यम् । आरोहति च संस्तारकं सुवि० ॥ ३९ ॥ पञ्चमहाव्रतकलितः पञ्चसु समितिषु सुषु-युक्तः । आरोहति च संस्तारकं सुवि० ॥ ४० ॥ पद्भ्यः कायेभ्यः प्रतिविरतः सप्तभयस्थानविरहितमतिकः । आरोहति च संस्तारकं सुवि० ॥ ४१ ॥ त्यक्ताष्टमदुःखानः कर्मणोऽष्टविधस्य क्षपणहेतोरिति । आरोहति च संस्तारकं सुवि० ॥ ४२ ॥ नवब्रह्मचर्यगुप्त उद्युक्तो दशविधे श्रमणधर्मे । आरोहति च संस्तारकं सुवि० ॥ ४३ ॥ युक्तस्योत्तमार्थं मर्दितकषायस्य निर्विकारस्य । भण कीदृशस्तु लाभः संस्तारकगतस्य श्रमणस्य ? ॥ ४४ ॥ युक्तस्योत्तमार्थं मर्दितकषायस्य निर्विकारस्य । भण कीदृशं च सौख्यं संस्तारकगतस्य क्षपकस्य ? ॥ ४५ ॥ प्रथमे दिवसे संस्तारकगतस्य यो भवति लाभः । क इदानीं तस्य शक्तेऽर्थं कर्तुमनर्थस्य ? ॥ ४६ ॥ यः संख्येयभवस्थितिकं सर्वमपि स

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

संस्तारक-श्रमणस्य को लाभ? तत् कथ्यते

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

मूल [४७]

प्रत  
सूत्रांक  
॥४७॥

दीप  
अनुक्रम  
[४७]

५ तंदुलव-  
चारिके  
॥ ५६ ॥

सर्वेपि खवेह सो तर्हि कम्मं । अणुसमयं साहुपयं साहू वुत्तो तर्हि समए ॥४७॥६३३॥ तणसंधारनिससोऽपि  
मुणिवरो भट्टरागमयमोहो । जं पावइ मुत्तिसुहं कत्तो तं चक्कवटीवि.१ ॥ ४८ ॥ ६३४ ॥ तप्पु(नियपु०) रिस्-  
नाडयंमिवि न सा(जा)रई तह सहस्स(त्थ)वित्थारे । जिणवयणंमिवि सा ते हेउसहस्सोवगूढंमि ॥४९॥६३५॥  
जं रागदोसमइअं सुक्खं जं होइ विसयमईयं च । अणुहवइ चक्कवटी न होइ तं वीअरागस्स ॥ ५० ॥ ६३६ ॥  
मा होइ वासगणया न तत्थ वासाणि परिगणिज्जंति । बहवे गच्छं वुत्था जम्मणमरणं च ते खुत्ता ॥ ५१ ॥  
॥ ६३७ ॥ पच्छावि ते पयाया खिप्पं काहंति अप्पणो पत्थं । जे पच्छिमंमि काले मरंति संधारमारूढा ॥५२॥  
॥ ६३८ ॥ नवि कारणं तणमओ संधारो नवि अ फासुआ भूमि । अप्पा खलु संधारो हवइ विसुद्धे चरि-  
त्तंमि ॥ ५३ ॥ ६३९ ॥ निचंपि तस्स भावुज्जुअस्स जत्थ व जहिं व संधारो । जो होइ अहक्खाओ बिहार-  
क्षपयति तत्र कर्म । अनुसमयं साहुपदात् साधुरुक्तस्स समये ॥ ४७ ॥ त्णसंस्तारकनिषण्णोऽपि मुणिवरो भट्टरागमदमोहः । यत्  
प्राप्नोति मुक्तिसौख्यं कुतस्तत् चक्रवर्त्यपि ? ॥४८॥ निजपुरुपनाटकेऽपि तथा स्वहस्तविस्तारे सा(या)रतिर्न । जिनवचनेऽपि सा ते हेतुसह-  
स्रोपगूढे ॥ ४९ ॥ यद् रागद्वेषमयं सौख्यं यद् भवति विषयमयं च । अनुभवति चक्रवर्ती न भवति तद् वीतरागस्य ॥ ५० ॥ मा भूत्  
वर्षगणका न तत्र वर्षाणि परिगण्यन्ते । बहवो गच्छे उपिता जन्ममरणयोस्ते निमग्नाः ॥ ५१ ॥ पश्चादपि ते प्रयाताः क्षिप्रं करिष्यन्त्या-  
त्मनः पथ्यम् । ये पश्चिमे काले त्रियन्ते संस्तारकमारूढाः ॥ ५२ ॥ नैव कारणं त्णमयः संस्तारको नैव च प्रासुका भूमिः । आत्मा  
खलु संस्तारको भवति विशुद्धे चारित्रे ॥ ५३ ॥ नित्यमपि तस्योगुतभावस्य यत्र वा यदा वा संस्तारकः । यो भवति यथाख्यातो विहा-

संस्तारके  
सौख्यं

॥ ५६ ॥

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

मूल [५४]

प्रत  
सूत्रांक  
॥५४॥

दीप  
अनुक्रम  
[५४]

मम्भुट्टि(लु)ओ लुहो ॥ ५४ ॥ ६४० ॥ वासारत्तमि तवं चित्तविचित्ताइ सुट्टु काऊणं । हेमंते संधारं आरुहइ  
सव्वत्थासु ॥ ५५ ॥ ६४१ ॥ आसीअ पोअणपुरे अज्जा नामेण पुप्फचूलसि । तीसे धम्मायरिओ पविस्सुओ  
अग्निआउत्तो ॥ ५६ ॥ ६४२ ॥ सो गंगमुत्तरंतो सहसा उस्सारिओ अ नावाए । पडिवन्न उत्तिमट्टं तेणवि  
आराहिअं मरणं ॥ ५७ ॥ ६४३ ॥ पंचमहवयकलिंआ पंचसया अज्जया सुपुरिसाणं । नयरंमि कुंभकारे कडगंमि  
निवेशिआ तइआ ॥ ५८ ॥ ६४४ ॥ पंचसया एगणा वायंमि पराजिएण रुट्टेणं । जंतंमि पावमइणा छुत्ता छत्रेण  
कम्मणेण ॥ ५९ ॥ ६४५ ॥ निम्ममनिरहंकारा निअयसरीरेवि अप्पडीबद्धा । तेवि तह छुज्जमाणा पडिवन्ना उत्तमं  
अट्टं ॥ ६० ॥ ६४६ ॥ दंढुत्ति विस्सुअजसो पडिमादसधारओ ठिओ पडिमं । जउणावके नगरे सरंहे विद्धो  
सयंगीओ ॥ ६१ ॥ ६४७ ॥ जिणवयणनिच्छिअमई निअयसरीरेऽवि अप्पडीबद्धो । सोऽवि तह विज्जमाणो  
रमभ्युत्थितो रूढः ॥ ५४ ॥ वर्षारात्रे तपांसि चित्रविचित्राणि सुट्टु कृत्वा । हेमन्ते संस्तारकमारोहति सर्वावस्थासु ॥ ५५ ॥ आसीअ  
पोतनपुरे आर्या नाम्ना पुप्फचूलेति । तस्या धर्माचार्यः प्रविश्रुतोऽर्णिकापुत्रः ॥ ५६ ॥ स गङ्गामुत्तरन् सहस्रोत्सारितो नावश्च । प्रतिपन्न  
उत्तमार्थं तेनाप्याराद्धं मरणम् ॥ ५७ ॥ पञ्चमहाप्रतकलिताः पञ्च शतानि आर्याः सुपुरुषाणाम् । नगरे कुम्भकारे कटके निवेशितास्तदा  
॥ ५८ ॥ पञ्च शतान्येकोनानि वादे पराजितेन रुष्टेन । यत्रेण पापमतिना हिंसिताः प्रच्छन्नकर्मणा ॥ ५९ ॥ निर्ममा निरहङ्कारा निजकशरीरे-  
ऽपि अप्रतिबद्धाः । तेऽपि तथा पील्यमानाः प्रतिपन्ना उत्तममर्थम् ॥ ६० ॥ दण्ड इति विश्रुतयज्ञाः प्रतिमादशाधारकः स्थितः प्रतिमाम् ।  
यमुत्तावके नगरे शरंविद्धः स्वयं गीतः ॥ ६१ ॥ जिनवचननिश्चितमतिर्निजकशरीरेऽप्यप्रतिबद्धः । सोऽपि तथा विध्यमानः प्रतिपन्न उत्त-

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

अथ संस्तारक (उत्तमार्थ)आराधकस्य दृष्टान्ताः-(लघु कथाः) आरभ्यते

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

मूलं [६२]

प्रत  
सूत्रांक  
॥६२॥

दीप  
अनुक्रम  
[६२]

५ तंदुलवै-  
चारिके  
॥ ५७ ॥

पडि० ॥ ६२ ॥ ६४८ ॥ आसी सुकोसलरिसी चाउम्मासस्स पारणादिवसे । ओरुहमाणो अ नगा खहओ  
मायाह वग्घीए ॥ ६३ ॥ ६४९ ॥ धीधणिअबद्धकच्चो पच्चखाणम्मि सुह उवउत्तो । सो तहवि खज्जमाणो  
पडि० ॥ ६४ ॥ ६५० ॥ उज्जेणीनघरीए अवंतिनामेण विस्सुओ आसी । पाओवगमनिवन्नो सुसाणमज्झम्मि  
एगंतो ॥ ६५ ॥ ६५१ ॥ तिन्नि रयणीइ खहओ भल्लुंकी रुट्टिया विकहुंती । सोवि तह खज्जमाणो पडि० ॥ ६६ ॥  
॥ ६५२ ॥ जल्लमलपंकधारी आहारो सीलसंजमगुणाणं । अज्जीरणो अ गीओ कत्तिअ अज्जो सुरवरं(णं)मि  
॥ ६७ ॥ ६५३ ॥ रोहीडगंमि नयरे आहारं फासुअं गवेसंतो । कोवेण खत्तिएण य भिन्नो सत्तिप्पहारेणं  
॥ ६८ ॥ ६५४ ॥ एगंतमणावाए विच्छिन्ने थंडिले चहअ देहं । सोऽपि तह भिन्नदेहो पडि० ॥ ६९ ॥ ६५५ ॥  
पाडलिपुत्तंमि पुरे चंदयगुत्तस्स चेव आसीअ । नामेण धम्मसीहो चंदसिरिं सो पयहिऊणं ॥ ७० ॥ ६५६ ॥  
ममर्थम् ॥ ६२ ॥ आसीत् सुकोशलर्षिः चतुर्मास्याः पारणकदिवसे । अवरोहन् नगात् खादितो मात्रा व्याड्या ॥ ६३ ॥ गाढधृतिवद्ध-  
कक्षाकः प्रत्याख्याने सुष्ठु उपयुक्तः । स तथापि खाद्यमानः प्रतिपन्न उत्तममर्थम् ॥ ६४ ॥ उज्जयिनीनगर्यामवन्तिनाम्ना विश्रुत आसीत् ।  
पादपोपगमनेन सुप्तः ( निपण्णः ) श्मशानमध्ये एकान्ते ॥ ६५ ॥ तिस्रः रात्रीः खादितः शृगाल्या रुष्टया विकर्षयन्त्या । सोऽपि तथा  
खाद्यमानः प्रतिपन्न उत्तममर्थम् ॥ ६६ ॥ जल्लमलपङ्कधारक आधारः शीलसंयमगुणानाम् । अजीर्णवान् गीतार्थश्च कार्तिकार्यः सुरवणे  
॥ ६७ ॥ रोहिडके नगरे आहारं प्रासुकं गवेषयन् । कोपेन च क्षत्रियेण भिन्नः शक्तिप्रहारेण ॥ ६८ ॥ एकान्तेऽनापाते विस्तीर्णे स्थण्डिले  
त्यक्त्वा देहम् । सोऽपि तथा भिन्नदेहः प्रतिपन्न उत्तममर्थम् ॥ ६९ ॥ पाटलीपुत्रे पुरे चन्द्रगुप्तकस्यैव आसीत् । नाम्ना धर्मासिंहश्चन्द्रश्रि-

संस्तारकेण  
उत्तमार्थ-  
कारकाः

॥ ५७ ॥

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

----- मूल [७१] -----

प्रत  
सूत्रांक  
॥७१॥

दीप  
अनुक्रम  
[७१]

कुल्लउरंमि पुरवरे अह सो अब्भुद्धिओ ठिओ धम्मे । कासीअ गिद्धपट्टं पच्चक्खाणं विगयसोगो ॥ ७१ ॥ ६५७ ॥  
अह सोवि चत्तदेहो तिरिअसहस्सेहिं खज्जमाणो अ । सोऽवि तह० ॥ ७२ ॥ ६५८ ॥ पाडलिपुत्तंमि पुरे  
चाणक्यो नाम विस्सुओ आसी । सवारंभनिअत्तो इंगिणिमरणं अह निवन्नो ॥ ७३ ॥ ६५९ ॥ अनुलोमपूअ-  
णाए अह से सत्तु जओ डहइ देहं । सो तहवि डज्जमाणो पडि० ॥ ७४ ॥ ६६० ॥ गुट्टयपाओवगओ सुबं-  
धुणा गोमये पलिविधंमि । डज्जंतो चाणक्यो पडि० ॥ ७५ ॥ ६६१ ॥ काइंदीनयरीए राया नामेण अमयघो-  
सुत्ति । तो सो सुअस्स रज्जं दाऊणं इह चरे धम्मे ॥ ७६ ॥ ६६२ ॥ आहिण्डिऊण वसुहं सुत्तथविसारओ  
सुअरहस्सो । काइंदिं चेव पुरिं अह पत्तो विगयसोगो सो ॥ ७७ ॥ ६६३ ॥ नामेण चंडवेगो अह से पडि-

यं(भार्या) स प्रहाय ॥ ७० ॥ कोलपुरे नगरे अथ सोऽभ्युत्थितः स्थितो धर्मे । अकार्षीच्च गुद्धपट्टं प्रत्याख्यानं विगतशोकः ॥ ७१ ॥  
अथ सोऽपि त्यक्तदेहस्तिर्यक्सहस्रैः खाद्यमानः । सोऽपि तथा खाद्यमानः प्रतिपन्न उत्तममर्थम् ॥ ७२ ॥ पाटलीपुत्रे पुरे चाणक्यो नाम्ना  
विश्रुत आसीत् । सर्वारम्भनिवृत्त इङ्गिनीमरणमथ निषण्णः ॥ ७३ ॥ अनुलोमपूजनयाऽथ तस्य शत्रुर्देहति देहम् । स तथापि दृष्टमानः  
प्रतिपन्न उत्तममर्थम् ॥ ७४ ॥ गोष्ठे पादपोषगतः सुबन्धुना गोमये प्रदीपिते । दृष्टमानश्चाणक्यः प्रतिपन्न उत्तममर्थम् ॥ ७५ ॥ काकन्यां  
नगुर्या राजा नाम्नाऽमृतघोष इति । ततः स सुताय राज्यं दत्त्वा इहाचरन् धर्मम् ॥ ७६ ॥ आहिण्ड्य वसुधां सूत्रार्थविशारदः श्रुतर-  
हस्यः । काकन्दीमेव पुरीमथ प्राप्तो विगतशोकः सः ॥ ७७ ॥ नाम्ना चण्डवेगोऽथ तस्य प्रतिच्छिनत्ति तर्कं देहम् । स तथापि छिद्य-

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

मूल [७८]

प्रत  
सूत्रांक  
॥७८॥  
दीप  
अनुक्रम  
[७८]

५ तंदुलवै-  
चारिके  
॥ ५८ ॥

छिदइ तयं देहं । सो तह्वि छिज्जमाणो पडिवन्नो ॥ ७८ ॥ ६६४ ॥ कोसंबीनघरीए ललिअघडा नाम  
विस्सुआ आसि । पाओवगमनिवन्ना वत्तीसं ते सुअरहस्सा ॥ ७९ ॥ ६६५ ॥ जलमज्जे ओगाढा नईइ पूरेण  
निम्ममसरीरा । तह्वि हु जलदहमज्जे पडिवन्ना ॥ ८० ॥ ६६६ ॥ आसी कुलाणनघरे राया नामेण वेस-  
मणदासो । तस्स अमच्चो रिट्ठो मिच्छदिट्ठी पडिनिविट्ठो ॥ ८१ ॥ ६६७ ॥ तत्थ य मुणिवरवसहो गणिपि-  
डगधरो तहासि आपरिओ । नामेण उसहसेणो सुअसागरपारगो धीरो ॥ ८२ ॥ ६६८ ॥ तस्सासी अ गण-  
हरो नाणासत्थत्थगहिअपेआलो । नामेण सीहसेणो वायंभि पराजिओ रुट्ठो ॥ ८३ ॥ ६६९ ॥ अह सो निरा-  
णुकंपो अग्गि दाऊण सुविहिअपसंते । सो तह्वि डज्झ ॥ ८४ ॥ ६७० ॥ कुरुदत्तोऽपि कुमारो सिंबलि-  
फालिब अग्गिणा दहो । सो तह्वि डज्झ ॥ ८५ ॥ ६७१ ॥ आसी चिलाहपुत्तो मुहंगुलिआहिं चालणिब  
मानः प्रतिपन्न उत्तममर्थम् ॥ ७८ ॥ कोशाभ्यां नगर्यां ललितघटानामानो विश्रुता आसीरन् । पादपोपगमने निपण्णा द्वात्रिंशत्ते श्रुतर-  
हस्याः ॥ ७९ ॥ जलमध्येऽवगाढा नयाः पूरेण निर्ममाः शरीरे । तथापि जलदहमध्ये प्रतिपन्ना उत्तममर्थम् ॥ ८० ॥ आसीन् कुलाण-  
( कुणाल ) नगरे राजा नाम्ना वैश्रमणदासः । तस्यामात्यो रिट्ठो मिथ्यादृष्टिः प्रतिनिविष्टः ॥ ८१ ॥ तत्र च मुनिवरवृषभो गणिपिटकधर-  
स्तथाऽऽसीदाचार्यः । नाम्ना ऋषभसेनः श्रुतसागरपारगो धीरः ॥ ८२ ॥ तस्यासीच्च गणधरो गृहीतनानाशार्थसारः । नाम्ना सिंह-  
सेनो वादे पराजितो रुष्टः ॥ ८३ ॥ अथ स निरनुकम्पोऽग्निं दत्त्वा सुविहिते प्रशान्ते । स तथापि दह्यमानः प्रतिपन्नः उत्तममर्थम् ॥ ८४ ॥  
कुरुदत्तोऽपि कुमारः शाल्मलीकापृथ्वण्ड इवाग्निना दग्धः । स तथापि दह्यमानः प्रतिपन्नः उत्तममर्थम् ॥ ८५ ॥ आसीन् चित्वात्पुत्रः

संस्तारकेण  
उत्तमार्थ-  
कारकाः

॥ ५८ ॥

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

----- मूल [८६] -----

प्रत  
सूत्रांक  
॥८६॥

दीप  
अनुक्रम  
[८६]

कओ । सो तहवि ख० ॥ ८६ ॥ ६७२ ॥ आसी गयसुकुमालो अल्लयचम्मं व कीलयसएहिं । धरणीअले  
उद्विद्धो तेणवि आराहिअं मरणं ॥ ८७ ॥ ६७३ ॥ मंखलिणावि य अरहओ सीसा तेअस्स उवगया दह्हा ।  
ते तहवि डड्झ० ॥ ८८ ॥ ६७४ ॥ परिजाणई तिगुत्तो जावजीवाइ सव्वमाहारं । संघसमवायमज्झे सागारं  
गुरुनिओगेणं ॥ ८९ ॥ ६७५ ॥ अहवा समाहिहेउं करेइ सो पाणगस्स आहारं । तो पाणगंपि पच्छा वोसिरइ  
सुणी जहाकालं ॥ ९० ॥ ६७६ ॥ खामेमि सव्वसंघं संवेगं सेसगाण कुणमाणो । मणवइजोगेहिं पुरा कयका-  
रिअअणुमए वाबि ॥ ९१ ॥ ६७७ ॥ सव्वे अवराहए एस खमावेमि अज्ज निस्सल्लो । अम्मापिऊसरिसंघा  
सव्वेऽवि खमंतु मह जीवा ॥ ९२ ॥ ६७८ ॥ धीरपुरिसपण्णत्तं सप्पुरिसनिसेविअं परमघोरं । धन्ना सिलाप-  
लगया साहंती उत्तमं अट्ठं ॥ ९३ ॥ ६७९ ॥ नारयतिरिअगईए मणुस्सदेवत्तणे वसंतेणं । जं पत्तं सुह-  
पिपीलिकामिआलनीव कृतः । स तथापि खाद्यमानः प्रतिपन्नः उत्तममर्थम् ॥ ८६ ॥ आसीद् गजसुकुमाल आर्द्रचर्मव कीलकसहस्रैः ।  
धरणितले उद्विद्धस्तेनाप्याराद्धं मरणम् ॥ ८७ ॥ मंखलिनाऽप्यर्हतः शिष्यौ तैजसोपगमनेन दग्धौ । तौ तथापि दहमानौ प्रतिपन्नाबुत्त-  
ममर्थम् ॥ ८८ ॥ परिजानीते त्रिगुप्तो यावज्जीवतया सर्वमाहारम् । सङ्घसमवायमध्ये साकारं गुरुनियोगेन ॥ ८९ ॥ अथवा समाधि-  
हेतोः करोति पानकस्याहारम् । ततः पानकमपि पश्चात् व्युत्सृजति मुनिर्यथाकालम् ॥ ९० ॥ क्षमयामि सर्वसङ्घं संवेगं शेषाणां कुर्वन् ।  
मनोवाग्योगैःपुरा कृतकारितानुमतीर्षामि ॥ ९१ ॥ सर्वाणि अपराधपदानि एष क्षमयामि अद्य निःश्लयः । मातापितृसदृशाः सर्वेऽपि  
क्षाम्यन्तु मयि जीवाः ॥ ९२ ॥ धीरपुरुषप्रज्ञसं सत्पुरुषनिषेवितं परमघोरम् । धन्याः शिलातलगताः साधयन्त्युत्तममर्थम् ॥ ९३ ॥ नारकति-

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

आहार-पान-ममत्व त्याग, क्षमापना आदीनां वर्णनं



आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूलं+संस्कृतछाया)

----- मूलं [९४] -----

प्रत  
सूत्रांक  
॥९४॥

दीप  
अनुक्रम  
[९४]

५ तद्दुर्लभै-  
चारिके  
॥ ५९ ॥

दुःखं तं अणुचिंते अणुमणो ॥ ९४ ॥ ६८० ॥ नरएसु वेअणाओ अणोवमाओ असायबहुलाओ । काय-  
निमित्तं पत्तो अणंतखुत्तो बहुविहाओ ॥ ९५ ॥ ६८१ ॥ देवसे मणुअत्ते पराभोगत्तणं खवगएणं । दुःख-  
परिकिलेसकरी अणंतखुत्तो समणभूओ ॥ ९६ ॥ ६८२ ॥ तिरिअगइं अणुपत्तो भीममहावेअणा अणोअरया  
(पारा) । जम्मणमरणअरहद्वे अणंतखुत्तो परिभमिओ ॥ ९७ ॥ ६८३ ॥ सुविहिअ ! अईयकाले अणंतकालं  
तु आगयगएणं । जम्मणमरणमणंतं अणंतखुत्तो समणभूओ ॥ ९८ ॥ ६८४ ॥ नत्थि भयं मरणसमं जम्मण-  
सरिसं न विज्जए दुःखं । जम्मणमरणायकं छिंद ममत्तं सरीराओ ॥ ९९ ॥ ६८५ ॥ अन्नं इमं सरीरं अन्नो  
जीवत्ति निच्छयमईओ । दुःखपरिकिलेसकरं छिंद ममत्तं ॥ १०० ॥ ६८६ ॥ जावंति केह दुःखा सारीरा  
माणसा व संसारे । पत्तो अणंतखुत्तो कायस्स ममत्तदोसेणं ॥ १०१ ॥ ६८७ ॥ तम्हा सरीरमाइं सर्विभतर-  
र्यग्गत्योर्मानुप्यदेवत्वयोर्वसता । यत् प्राप्तं सुखदुःखं तदनुचिन्तयत्यनन्यमनाः ॥ ९४ ॥ नरकेषु वेदना अनुपमा असातबहुलाः । कायनि-  
मित्तं प्राप्तोऽनन्तकृत्वो बहुविधाः ॥ ९५ ॥ देवत्वे मनुजत्वे पराभियोगत्वमुपगतेन । दुःखपरिक्षेपकरीरनन्तकृत्वः समनुभूतवान् ॥ ९६ ॥  
तिर्यग्गतिसमुपगतो भीमा महावेदना अनुत्ताराः । जन्ममरणारघट्टेऽनन्तकृत्वो (वेद्यन्) परिभ्रान्तः ॥ ९७ ॥ सुविहित ! अतीतकालेऽनन्त-  
कालं तु गतागताभ्यां । जन्ममरणमनन्तमनन्तकृत्वः समनुभूतवान् ॥ ९८ ॥ नास्ति भयं मरणसमं जन्मसदृशं न विद्यते दुःखम् । जन्म-  
मरणातद्धं छिन्धि ममत्वं शरीरान् ॥ ९९ ॥ अन्यदिदं शरीरमन्यो जीव इति निश्चयमतिकः । दुःखपरिक्षेपकरं छिन्धि ममत्वं शरीरान्  
॥ १०० ॥ यावन्ति कानिचिद् दुःखानि शारीराणि मानसानि वा संसारे । प्राप्तेऽनन्तकृत्वः कायस्य ममत्वदोषेण ॥ १०१ ॥ तस्मान्

आहार-  
त्यागः  
क्षामणं  
ममत्व-  
त्यागः

॥ ५९ ॥

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

अन्यत्व, संसार आदि भावना वर्णयते

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

----- मूल [१०२] -----

प्रत  
सूत्रांक  
॥१०२॥

दीप  
अनुक्रम  
[१०२]

बाहिरं निरवसेसं । छिंद ममत्तं सुविहिअ ! जइ इच्छसि उत्तमं ठाणं ॥ १०२ ॥ ६८८ ॥ जगआहारो संघो  
सव्वो मह खमउ निरवसेसंपि । अहमवि खमामि सुद्धो गुणसंघायस्स संघस्स ॥ १०३ ॥ ६८९ ॥ आयरिअ  
उवज्झाए सीसे साहम्मिए कुलगणे य । जे मे केइ कसाया सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ १०४ ॥ ६९० ॥ सव्वस्स  
समणसंघस्स भयवओ अंजलिं करिअ सीसे । सव्वं खमावइत्ता अहमवि खामेमि सव्वस्स ॥ १०५ ॥ ६९१ ॥  
सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहिअनिअचित्तो । सव्वं खमावइत्ता अहयंपि खमामि सव्वेसिं ॥ १०६ ॥  
॥ ६९२ ॥ इअ खामिआहारो अपुत्तरं तवसमाहिंसारूढो । पप्फोडंतो विहरइ बहुविहवाहाकरं कम्मं  
॥ १०७ ॥ ६९३ ॥ जं बद्धमसंखिज्जाहिं असुभभवसयसहस्सकोडीहिं । एगसमएण विहुणइ संघारं आरूहंतो  
य ॥ १०८ ॥ ६९४ ॥ इअ (ह) तह विहारिणो से विग्घकरी वेअणा समुट्टेइ । तीसे विज्झवणाए अपुसट्ठिं  
शरीरादौ साभ्यन्तरे बाह्ये निरवशेषे । छिन्दि ममत्वं सुविहित ! यदीच्छसि उत्तमं स्थानम् ॥ १०२ ॥ जगदाधारः सङ्घः  
सर्वः क्षाम्यतु मम निरवशेषमपि । अहमपि क्षमयामि शुद्धो गुणसंघाते सङ्घे ॥ १०३ ॥ आचार्यान् उपाध्यायान् शिष्यान् साध-  
र्मिकान् कुलगणान् । ये मया कषायिताः सर्वान् त्रिविधेन क्षमयामि ॥ १०४ ॥ सर्वस्य श्रमणसङ्घस्य भगवतोऽञ्जलिं कृत्वा शीर्षे सर्वं  
क्षमयित्वा अहमपि क्षमयामि सर्वस्य ॥ १०५ ॥ सर्वस्य जीवराशेर्भावतो धर्मे निहितनिजचित्तः । सर्वं क्षमयित्वा अहमपि क्षाम्यामि  
सर्वस्य ॥ १०६ ॥ इति क्षमितातिचारोऽनुत्तरं तपःसमाधिमारूढः । बहुविधवाधाकरं कर्म प्रस्फोटयन् विहरति ॥ १०७ ॥ यद् बद्ध-  
मसंख्येयानिरशुभभवशतसहस्रकोटीमिः । एकसमयेन विधुनाति संस्तारकमारोहजेव ॥ १०८ ॥ इह तथाविहारिणस्तस्य विघ्नकरी वेदना

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

अथ उत्तमार्थ-आराधना-पूर्व आचरणियविधिः कथ्यते

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूलं+संस्कृतछाया)

मूलं [१०९]

प्रत  
सूत्रांक  
॥१०९॥  
दीप  
अनुक्रम  
[१०९]

६ संथारय-  
पइणयं  
॥ ६० ॥

दिति निज्जवया ॥ १०९ ॥ ६९५ ॥ जइ ताव ते मुणिवरा आरोविअवित्थरा अपरिकम्मा । गिरिपभार  
विकग्गा बहुसावयसंकडं भीमं ॥ ११० ॥ ६९६ ॥ धीधणिअवद्धकच्छा अणुत्तरविहारिणो समक्खाया ।  
सावयदादगयाविहु साहंती उत्तमं अट्टं ॥ १११ ॥ ६९७ ॥ किं पुण अणगारसहायगेहिं धीरोहिं संगयम-  
णेहिं । नहु नित्थरिज्जइ इमो संथारो उत्तमं अट्टं ॥ ११२ ॥ ६९८ ॥ उच्छुटसरीरघरा अणो जीवो सरीरम-  
न्नंति । धम्मस्स कारणे सुविहिआ सरीरं पि छडुंति ॥ ११३ ॥ ६९९ ॥ पौराणिअ पशुप्पन्निआ उ अहिआसि-  
ऊण विअणाओ । कम्मकलंकलवल्लीं विहुणइ संथारमारूढो ॥ ११४ ॥ ७०० ॥ जं अज्जाणी कम्मं खवेइ बहु-  
आहिं वासकोडीहिं । तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥ ११५ ॥ ७०१ ॥ अट्टविहकम्ममूलं बहु-  
एहिं भवेहिं संचिअं पावं । तं नाणी० ॥ ११६ ॥ ७०२ ॥ एवं मरिऊण धीरा संथारंमि उ गुरु पसत्थंमि ।

समुत्तिष्ठति । तस्या विध्यापनायानुशास्ति ददति निर्यापका गीतार्थाः ॥ १०९ ॥ यदि तावन् ते मुनिवरा आरोपितविस्तरा अपरिकर्माणः ।  
गिरिप्राभारं विज्जमा बहुश्रापदसंकटं भीमम् ॥ ११० ॥ बाढंघृतिषड्दक्षकाः अनुत्तरविहारिणः समाख्याताः । श्रापददंघ्रागता अपि  
सावयन्त्येबोत्तममर्थम् ॥ १११ ॥ किं पुनरनगरसहायकैर्धैरैः संगतमनोभिः । नैव निस्तीर्यतेऽयं संस्तारक उत्तममर्थमाश्रित्य ॥ ११२ ॥  
त्यक्तशरीरगृहा अन्यो जीवः शरीरमन्यदिति । धर्मस्य कारणात् सुविहिताः शरीरमपि त्यजन्ति ॥ ११३ ॥ पौराणिकीः प्रत्युत्पन्ना अध्यास्य  
वेदनाः । कर्मकलङ्कवल्लीं विधुनाति संस्तारकमारूढः ॥ ११४ ॥ यदज्ञानी कर्म क्षपयति बहुकामिर्वर्षकोटीभिः । तद् ज्ञानी तिसृभिर्गुणैः  
क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेण ॥ ११५ ॥ अष्टविधकर्ममूलं बहुकैर्भैवैः संचितं पापम् । तद् ज्ञानी तिसृभिर्गुणैः क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेण ॥ ११६ ॥ एवं

कृतसंस्तार-  
कस्य  
अनुशास्तिः

॥ ६० ॥

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org

संस्तारकस्य (उत्तमार्थ-आराधकस्य) प्राप्त आराधना-फलम्

आगम  
(२९)

## “संस्तारक” - प्रकीर्णकसूत्र-६ (मूल+संस्कृतछाया)

मूलं [११७]

प्रत  
सूत्रांक  
॥११७॥

दीप  
अनुक्रम  
[११७]

तद्व्यभवेण व तेण व सिद्धिज्जा खीणकम्मरथा ॥ ११७ ॥ ७०३ ॥ गुत्तीसमिद्दुण्हो संजमतवनिअमक-  
रणकयमउडो । सम्मत्तनाणदंसणतिरयणसंपाविअसमग्घो (महग्घो) ॥ ११८ ॥ ७०४ ॥ संघो सइंदयाणं  
सदेवमणुआसुरम्मि लोगम्मि । दुल्लहतरो विसुद्धो सुविसुद्धो तो महामउडो ॥ ११९ ॥ ७०५ ॥ इज्जतेणवि  
गिम्हे कालसिलाए कवड्ढिभूआए । सूरें व चंडेण व किरणसहसंपयंडेणं ॥ १२० ॥ ७०६ ॥ लोगविजयं  
कारितेण तेण ज्ञाणोवउत्तचित्तेणं । परिसुद्धनाणदंसणविभूइमतेण चित्तेणं ॥ १२१ ॥ ७०७ ॥ चंदगविज्जं  
लद्धं केवलसरिसं समाउ परिहीणं । उत्तमलेसाणुगओ पडिवत्तो उत्तमं अट्ठं ॥ १२२ ॥ ७०८ ॥ एवं मए अभि-  
थुआ संथारगइंदखंधमारूढा । सुसमणनरिंदचंदा सुहसंकमणं सया दिंतु ॥ १२३ ॥ ७०९ ॥ संथारगपहणयं  
सम्मत्तं ॥ ६ ॥

मृत्वा धीराः संस्तारके गुरुभिः प्रशंसिते । तृतीयभवेन वा तेन वा सिध्यन्ति क्षीणकर्मरजसः ॥ ११७ ॥ गुत्तिसमिद्दिगुणाह्यः  
संयमतपोनियमकरणकृतमुकुटः । सम्यक्त्वज्ञानदर्शनत्रिरत्रसंप्रापितसमर्धत्वः ॥ ११८ ॥ सङ्घः सेन्द्रे सदेवमणुआसुरे लोके । दुर्लभतरो  
विसुद्धः सुविसुद्धस्ततो महामुकुटः ॥ ११९ ॥ दहमानेनापि मीढ्मे कृष्णशिलायां कटाहभूतायाम् । सूर्येण वा चण्डेन किरणसहस्रप्रच-  
ण्डेन ॥ १२० ॥ लोकविजयं कुर्वता तेन ध्यानोपयुक्तचित्तेन । परिसुद्धज्ञानदर्शनविभूतिमता चित्तेन ॥ १२१ ॥ चन्द्रावेभ्यकं लब्धं  
केवलसदृशं साम्येनापरिहीणम् । उत्तमलेश्यानुगतः प्रतिपन्न उत्तममर्थम् ॥ १२२ ॥ एवं मयाऽमिष्टुताः संस्तारकगजेन्द्रस्कन्धमारूढाः ।  
सुसमणनरेन्द्रचन्द्राः सुखसंकमणं मदा ददतु ॥ १२३ ॥ इति संस्तारकप्रकीर्णकम् ॥ ६ ॥

च. स. ११

Jain Education International

For Personal & Private Use Only

www.jainelibrary.org



मुनिश्री दीपरत्नसागरेण पुनः संपादितः (आगमसूत्र २९)

“संस्तारक” परिसमाप्तः

नमो नमो निम्मलदंसणस्स  
पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

29

पूज्य आगमोद्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधितः संपादितश्च  
“संस्तारक-प्रकीर्णकसूत्र” [मूलं एवं छायाः]

(किंचित् वैशिष्ट्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलितः  
“संस्तारक” मूलं एवं संस्कृतछायाः” नामेण  
परिसमाप्तः

Remember it's a Net Publications of 'jain\_e\_library's'